Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 SHISRRJ | Volume 7 | Issue 2
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

हिंदी कथा-साहित्य का फिल्मांतरण: प्रेम-विषयक संदर्भ

सुंदरम आनन्द
शोधार्थी, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली।

Article Info

Received : 03 March 2024
Published : 15 March 2024

Publication Issue :
March-April-2024
Volume 7, Issue 2

Page Number : 49-55

सारांश:- प्रेम और रोमांस हिंदी सिनेमा में एक स्थिरांक की तरह अवश्य मौजूद रहा है, पर उसकी धारणा समय और समाज में हो रहे परिवर्तनों के साथ बदलती भी रही है। नेहरूवादी दौर में प्रेम विषयक फिल्मों में जहाँ एक सामाजिक संदेश होता था, वहीं 1970 के दशक तक आते-आते उसमें ग्लैमर के तत्वों का समावेश बढ़ता गया। उदारीकरण के दौर में यह बदलाव विषयवस्तु और प्रस्तुतिकरण के स्तर पर उन्मुक्त और बहुआयामी होता गया। कथा-साहित्य पर आधारित प्रेम विषयक फिल्मों में भी इन परिवर्तनों को बदलते सामाजिक नैतिक मानदंडों के साथ बदलते हुए देखा जा सकता है।

मूलशब्द:- हिंदी सिनेमा, फिल्मांतरण, कथा-साहित्य, प्रेम और रोमांस, बॉलीवुड, उदारीकरण।

हिंदी सिनेमा के विकास और विस्तार में प्रेम और रोमांस आधारित विषय वस्तुओं की उपस्थिति इतनी प्रचुरता में है कि 'प्रेम' हिंदी सिनेमा की विषयगत नहीं बल्कि स्वभावगत विशेषता बनकर सामने आता है। इन फिल्मों में प्रेम एक नैतिक मानदंड के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि फिल्मों के जो चरित्र प्रेम में विश्वास रखते हैं अथवा प्रेम के प्रति समर्थन का भाव रखते हैं, उनकी छवि जनमानस में नायक के रूप में परिकल्पित कर ली जाती है, वही प्रेम के प्रति विरोध या उदासीनता भरा दृष्टिकोण रखने वाले पात्रों को खलनायक के रूप में देखा जाता है । कई बार तो इन फिल्मों के माध्यम से प्रेम का प्रस्तुतिकरण जीवन के मूल उद्देश्य के रूप में सामने आता है। लोकप्रिय हिंदी सिनेमा में प्रेम को प्लूटॉनिक या अतियथार्थवादी रूप में पेश किया जाता रहा है। उल्का अंजरिया लिखती हैं -"In Bollywood, love is part of one's destiny. This is why so many Bollywood lovers fall in love at first sight, which is less meant to be taken literally, than to emphasize love as part of some larger divine plan, rather than something within individual agency or control."[1]

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

हिंदी सिनेमा में प्रेम को एक ऐसे नैतिक सांचे में ढालकर प्रस्तुत किया जाता है कि प्रेम में असीम आस्था रखने वाला नायक परिवार, समाज या पूरी व्यवस्था के विरुद्ध जाकर भी उस अपने प्रेम को हासिल करने का प्रयास करता है। सौ वर्षों से भी पुराने हिंदी सिनेमा में प्रेम विषयक फ़िल्में कभी न पुरानी पड़ने वाली थीम के मानिंद उपस्थित नज़र आती है। कई बार तो एक केंद्रीय विषय की अलग-अलग व्याख्याएं सिनेमाई परदे पर आई हैं और वे बेहद सफल फिल्मों के रूप में याद की जाती हैं। मशहूर बांग्ला उपन्यासकार शरतचन्द्र के उपन्यास 'देवदास' पर अलग-अलग भाषाओं में बनी फिल्मों अथवा केशव प्रसाद मिश्र के उपन्यास 'कोहबर की शर्त' पर बनी 'नदिया के पार (1981) और 'हम आपके है कौन' (1994) जैसी फिल्में इस अर्थ में द्रष्टव्य है।

प्रेम विषयक हिंदी फिल्मों ने भारतीय समाज के यथार्थ का जितना चित्रण किया है, उससे कहीं ज्यादा प्रेम और रोमांस पर आधारित सामाजिक आदर्श या रोल मॉडल गढ़ने में सफल रहा है। रशेल ड्वायर का मत है - "Hindi film has a whole language of love and romance which has set the model for ways in which romance is imagined and emulated in real life. While the beauty of the stars may not be achievable and travel to the exotic locations may be beyond most people's budgets, elements such as the poetry, song and language, and the film's style and manner, can be copied and referenced. The film's ideals of romance skillfully draw on existing traditions and social customs as well as adding a new twist to create a fantasy of who should be romancing whom, where and how; what to do and what to say."[2]

हिंदी कथा-साहित्य पर आधारित फिल्मों की बात की जाए तो 'उसने कहा था' (1960) एक उल्लेखनीय फिल्म है जो बिमल रॉय प्रोडक्शन के बैनर तले बनी और जिसे मोनी भट्टाचार्य ने निर्देशित किया। फ़िल्म इसी नाम की चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी का फ़िल्मान्तरण है। 1915 में लिखी गयी हिन्दी साहित्य की यह प्रथम कहानी मानी जाती है। यह कहानी, अपनी विषय-वस्तु में, उसकी प्रस्तुति में, शैली और भाव में, आज भी नयी लगती है। कहानी उन दिनों लिखी गयी थी जब हिन्दी कहानी और हिन्दी साहित्य संयोग, आकस्मिकता, अय्यारी, रहस्य रोमांच और चमत्कारों के वर्णन में डूबा हुआ था। उस समय यह कहानी रोमांटिक होते हुए भी यथार्थ के धरातल पर टिकी है। कह सकते हैं कि हिन्दी कहानी में यह यथार्थवादी परम्परा का प्रारम्भ है। कहानी में वे सभी तत्व हैं, जैसे कि नाटकीयता, भरपूर स्थानिक रंग, जीवन्त संवाद और वर्णन, स्वप्न और फ्लैश बैक की सिनेमाई तकनीक, जो इस कहानी का फ़िल्मान्तरण सहज बनाते हैं। कहानी की एक पृष्ठभूमि प्रथम महायुद्ध की है, जिसने फिल्म को और भी प्रभावी और नाटकीय बनाने की सम्भावना पैदा की।

फ़िल्म की कहानी में पंजाबी सिख लहना सिंह के स्थान पर पंजाबी हिन्दू नन्दू (सुनील दत्त) है। बचपन में उसकी मुलाकात दही की एक दुकान पर एक गली मोहल्ले में नयी आयी छोटी लड़की कमली (नंदा) से होती है। उसे वह "तेरी कुड़माई हो गयी"[3] कहकर छेड़ता है। लड़की अपने घर दूसरे शहर चली जाती है। फ़िल्म में नन्दू एक निठ्ठला है और उसे मुर्गाबाज़ी करता दिखाया गया है। अमृतसर अथवा पंजाब में सामान्यत: निठ्ठले जवान लोग मुर्गेबाज़ी करते नहीं दिखायी देते। नवाबों का यह शौक उत्तर प्रदेश में देखा जाता था। फ़िल्म में यह फिट नहीं बैठता। यह प्रसंग इसलिए जोड़ा गया है

ताकि नन्दू की माँ उसे अच्छे चाल-चलन की शिक्षा दे सके। फ़िल्म के अन्त में नन्दू की माँ नन्दू के शौर्य के लिए पदक स्वीकार करती दिखायी जाती है। मूल कहानी में लहना सिंह किसी विदेश के सैनिकों के सामूहिक शहीदी स्थल की तख्ती पर केवल एक गुमनाम नम्बर बन जाता है- न. 77 सिख राइफल्स जमादार लहना सिंह। फिल्म फार्मूला प्रणय कहानी बनकर रह गयी है- जिसमें मूल कहानी के अपेक्षित प्राण नहीं हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी प्रेम कहानी नहीं है। कहानी में केवल एक सूक्ष्म प्रेम का अहसास है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से जोड़ता है। कहानी में यह अहसास ही रहता है और अधिकतर अव्यक्त रहता है। कहानी में यह संवेदना व्यक्ति के सामाजिक उत्तरदायित्व के बोध से मन का अन्तर्द्वन्द्व बन जाती है। कहानी इस अन्तर्द्वन्द्व की परिणति की घटना है। एक प्रणय कहानी की दृष्टि से आँकी जाये तो फ़िल्म दर्शक को लुभा सकती है। फ़िल्म में कुछ दृश्यों का संयोजन सुन्दरता से किया गया है। एक दृश्य में जब कमली शहर छोड़कर रेलवे स्टेशन पहुँचती है; और इस खबर से अनजान नन्दू, यह जानने पर रेलवे स्टेशन पर दौड़ता पहुँचता है और नन्दू रेलगाड़ी के पीछे भागता है, तब रेल के विशालकाय पहिये की गति के साथ ही नन्दू की माँ का सिलाई की छोटी मशीन का पहिया चलता है। और उसके पहिये की गति के साथ ही नन्दू की माँ कहती है-"आज क्यों बार-बार तागा (धागा) टूटता है।"[4] इस समय के पहिये के साथ-साथ नन्दू भी जवान होता है। इसी प्रकार कहानी के प्राण-सम संवाद 'तेरी कुड़माई हो गयी कुड़िये' की स्मृति के दरम्यान कमली की सगाई होती है और उसके बाद दिवाली के पटाखे का शोर-उल्लास है, परन्तु उसके तुरन्त बाद कुत्तों की आवाज़ के बीच नन्दू के अकेलेपन के भारी कदम की चाप सुनायी देती है। इसी प्रकार फौज के बिगुल के साथ शादी की शहनाई के सुर मिश्रित किये गये हैं। एक अन्य दृश्य है, फौज में जाते समय कमली नन्दू से ना मिल सकने के कारण, उसे छत से निहारने की कोशिश करती है। वह छत के प्रत्येक कोने से उसे देखने के लिए विचलित है। यह दृश्य कमली के प्रेम की उत्कण्ठा को बयाँ करता है। नन्दू का पहली बार कहा गया "तेरी कुड़माई हो गयी"[5], शरारत से भरा था, परन्तु दूसरी बार यही संवाद, संवेदनशील बन जाता है।

भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास "चित्रलेखा" हिन्दी के अनन्य उपन्यासों में गणनीय है जिसकी लोकप्रियता आज भी कायम है। 1941 में केदार शर्मा के निर्देशन में "चित्रलेखा' पर एक फिल्म भी प्रदर्शित हुई थी, जो हिन्दी सिनेमा की एक उतनी ही महत्वपूर्ण घटना थी जितनी "चित्रलेखा" का प्रकाशन केदार शर्मा ने 1941 के बाद इस फ़िल्म को पुन: 1964 में बनाया। 'चित्रलेखा' को भारतीय इतिहास के चन्द्रगुप्त मौर्य के युग में स्थित किया गया है। हिन्दी सिनेमा की हिन्दू राष्ट्र की काल्पनिक गौरववंत छवि और संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसरण में चित्रलेखा की कहानी राजसी सामन्तों और उनके अति सम्मानीय ब्राह्मण योगियों के आख्यान तक सीमित रहती है। रूप-सज्जा, मंच-सज्जासभी मान्य परिपाटी के अनुसार हैं। मन्दिरों के प्रणय युगल की मूर्तियाँ, राजसी महलों के बड़े-बड़े स्तम्भ, और भारी-भरकम वेशभूषा और आभूषण कहानी के पात्रों को सामान्य जीवन से विशिष्ट तो बनाते हैं, साथ ही उन्हें अस्वाभाविक और कृत्रिम भी। पौराणिक विषय पर बनी फ़िल्में और "रामायण और महाभारत" जैसे टी.वी. सीरियल छद्म सांस्कृतिक बाहुल्य देखने के हम आदी हो गये हैं और इन प्रस्तुतियों में इतिहास मिथक के सामने दम तोड़ देता है। चित्रलेखा भी एक ऐसी ही काल्पनिक छद्म ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बनाती है।

यह स्पष्ट है कि 1941 की फ़िल्म उपन्यास का पूरा अनुकरण नहीं करती। उपन्यास में चित्रलेखा कुमारगिरि की तरफ आकृष्ट विवाह के प्रस्ताव से पूर्व ही हो जाती है। उपन्यास और फ़िल्म में बीजगुप्त और यशोधरा के विवाह का पता चलता है, तब चित्रलेखा को कुमारगिरि के पास जाने का बहाना मिल जाता है। बीजगुप्त का त्याग चित्रलेखा के लिए आघात समान है। इस घटना के बाद फ़िल्म का रुख बदल जाता है। उपन्यास में बीजगुप्त मृत्युंजय, यशोधरा और श्वेतांक के साथ वाराणसी चला जाता है, फ़िल्म में वीजगुप्त गया जाता है। फ़िल्म में बीजगुप्त की गया यात्रा पापकर्म से मुक्ति के लिए है जो उपन्यास में नहीं है। फ़िल्म में भी कुछ समय के लिए बीजगुप्त चित्रलेखा से अलग होकर यशोधरा की तरफ आकृष्ट होता है परन्तु उपन्यास की तर्ज पर उसका स्थायी रूझाव चित्रलेखा के प्रति ही रहता है। यह सच है कि बीजगुप्त यशोधरा का प्यार ना मिलने पर वह स्त्री मात्र को माया समझने लगता है और संसार त्याग कर संन्यासी बन जाता है। चित्रलेखा के प्रति अपने वासनात्मक प्रेम से फ़िल्म में कुमारगिरि में ग्लानि पैदा होती है और वाह आत्महत्या कर लेता है। उपन्यास में कुमारगिरि की आत्महत्या के पीछे कोई भाव उत्पन्न नहीं होता। उपन्यास में बीजगुप्त अपनी सम्पत्ति, अपना वैभव और अपना पद सबकुछ त्याग देता है लेकिन यह नहीं कहा गया है कि वह संन्यासी हो। जाता है। इसी तरह चित्रलेखा भी अपनी सम्पत्ति और वैभव त्याग देती है, लेकिन वह बीजगुप्त की शिष्या नहीं बनती जैसाकि फिल्म में बताया गया है। फिल्मकार एक सरल विडम्बना दिखाना चाहता है जिसमें संन्यासी है वह भोगी बन जाता। और संसार- प्रेमी गृहस्थ संसार त्यागकर योगी बन जाता है। प्रकट है कि केदार शर्मा "वैराग्य" की विषय-वस्तु से आकृष्ट हैं। उनकी फिल्मों में भी प्रेम से हारा व्यक्ति संन्यास की ओर बढ़ जाता है। उनकी सफल फिल्म 'जोगन' (1950) में नायिका जोगन बन जाती है।

इस फ़िल्म में भी एक-दो प्रसंगों को छोड़कर कथानक उपन्यास का अनुसरण करता है। फ़िल्म की अवधि की मर्यादा के कारण उपन्यास के कई प्रसंग नहीं हैं, फिर भी कई नये पात्र और प्रसंग जोड़े गये हैं। उपन्यास में यशोधरा और बीजगुप्त की सगाई नहीं होती सिर्फ मृत्युंजय की ओर से यह प्रस्ताव आता है। लेकिन फ़िल्म में आरम्भ में ही बताया जाता है कि यशोधरा और बीजगुप्त की सगाई एक "शुभ दिन" के उल्लास से होती है, अलबत्ता सगाई फ़िल्म में भी नहीं दिखायी गयी है, उसे संवादों के माध्यम से ही बताया गया है। इस सगाई के बावजूद बीजगुप्त एक नर्तकी के प्रेम-पाश में बँधा है और इसके औचित्य पर कोई प्रश्न नहीं उठाया गया।

साहित्य के फ़िल्मान्तरण में वैचारिक चर्चा की यथावत प्रस्तुति कठिन होती है। साहित्यिक कृति में पुन: अवलोकन आसान है, परन्तु फ़िल्म में दर्शकों को समय के प्रवाह में अनवरत देखना पड़ता हैं और उसमें जटिल विचार-विमर्श ग्रहण करन सामान्य दर्शक के लिए आसान नहीं है। लेखक कर्म और भोग को समानान्तर स में देख सकते हैं। लेखक एक तरफ कर्म पर जोर देता है तो दूसरी तरफ भोग के प्रति भी आश्वस्त दिखायी देता है। फ़िल्म में बीजगुप्त का संसार त्याग और चित्रलेखा का भी ऐश्वर्य त्याग वैराग्य को अधिक तरजीह देता प्रतीत होता है।। उपन्यास का एक सबल पक्ष है इसकी संस्कृतनिष्ठ काव्यमय भाषा जो फिल्म है। सम्भव नहीं है। यह सामान्य दर्शक की समझ से शायद पर चला जाता। इस का आनन्द फ़िल्म में नहीं मिल सकता।

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गये गुलफाम' पर गीतकार – कवि शैलेन्द्र ने बासु भट्टाचार्य के निर्देशन में 'तीसरी कसम' (1966) फ़िल्म का निर्माण किया। प्रयोगधर्मी फिल्में बनाने वाले वासु भट्टाचार्य की यह पहली हिन्दी फ़िल्म थी। यह पूरी फ़िल्म मध्य प्रदेश के बीना एवं ललितपुर के पास खिमलासा में फिल्मांकित की गयी थी।

कहानी है हीरामन गाड़ीवान की। वह सम्भवत: सीमा के उस पार मोरंगराज नेपाल से तस्करी का सामान ढोता रहता है। सीमा के इस पार तराई में एक बार उसकी गाड़ी पकड़ी गयी थी। उस समय उसने अपने बैलों के साथ अंधेरे में भाग कर जान बचायी थी और साथ ही पहली कसम खायी थी कि वह गाड़ी में तस्करी का सामान नहीं लादेगा। एक बार जब वह गाड़ी में बाँस के गट्ठर ले जा रहा होता है तभी गाड़ी दुर्घटना में फँस जाती है और वह दूसरी कसम खाता है कि वह गाड़ी में बाँस नहीं ढोयेगा। मूल कहानी और फ़िल्म 'तीसरी कसम' यहाँ से शुरू होती है। फ़िल्म हीराबाई की कहानी है; उपन्यास और फ़िल्म के शीर्षक से लगता है कि फ़िल्म में गाड़ीवान भोले–भाले हीरामन के भौतिक और भावनात्मक आघात पर खायी गयी कसमों की कहानी है, वास्तव में तीसरी अन्तिम कसम में हीरामन की त्रासदी से अधिक हीराबाई की त्रासदी है।

फ़िल्म के निर्माता शैलेन्द्र अच्छे गीतकार तो थे ही, इस फ़िल्म के लिए उन्होंने सार्थक और भावपूर्ण गीत लिखे जिन्हें संगीतकार शंकर–जयकिशन ने गीतों के सरल और कई जगह लोक, सधुक्कड़ी भाषा के अनुरूप सरल धुनें बनायीं। 'तीसरी कसम' में दस गाने हैं जो फ़िल्म में चालीस मिनट तक सुनायी देते हैं। उनमें से चार गाने (सजन रे झूठ, सजनवा वैरी, लाली लाली, मारे गये गुलफाम) कहानी में से लिए गये हैं और पाँचवाँ गाना "दुनिया बनाने वाले" कहानी के पाठ से लिया गया है। इन्हीं गानों से 'तीसरी कसम' की कहानी प्रकट होती है। फ़िल्म की कहानी फ़िल्म के इन गीतों से मुखरित होती है।

महुआ की कहानी केवल एक लोककथा है और फ़िल्म में कहीं भी इसका नाट्यकरण नहीं है, परन्तु यह फ़िल्म के केन्द्र में है। हीराबाई और हीरामन का प्रेम इसी लोककथा की प्रतिध्वनि है। गाने में नारी के दमन की कहानी सुनायी। देती है। उत्कण्ठित महुआ मुक्त और स्वतन्त्र होने की प्रतीक्षा में है, ताकि वह अपने नारीत्व को प्राप्त कर सके। महुआ की कहानी की तात्कालिकता नारी की सदियों से चली आ रही पीड़ा से जोड़ती है तीसरी कसम' की मार्मिकता हीराबाई के जीवन–यापन की कठिन स्थिति में निहित है। स्थानीय ज़मीदार (इफ्तिखार) उसे हमबिस्तर करने की कोशिश करते हैं। गाँव–गाँव यान्त्रिक नौटंकी में काम करने वाली के लिए गाँव के प्रमुख रईस से हम विस्तर होना सामान्य है, परन्तु एक निष्कलंक व्यक्ति हीरामन से अव्यक्त नाता जुड़ने से हीराबाई स्वयं को रोक लेती है। ज़मीदार भी हैरान है और उसे ताना देता है कि वह उसे छोड़कर एक गरीब गँवार से सम्बन्ध बना रही है। हीराबाई नारी की लैंगिक द्विआंगी सरल शब्दों में बयान करती है– 'आपको लगता है कि मैं एक बाजारू औरत (वेश्या) हूँ, वह सोचता है कि मैं एक देवी हूँ। तुम दोनों गलत हो ।'

हीराबाई की कुर्बानी का हीरामन को कभी पता नहीं चलेगा। फ़िल्म के अन्तिम दृश्य में रेलगाड़ी के विशालकाय पहिये तीव्र गति से ज़मीन पर रगड़ने की आवाज़ करते है और वहीं, मुक्ति के प्रतीक के तौर पर आकाश में अकेला एक पक्षी उड़ता दिखाया गया है। एक तरफ धुंआ उगलता गाड़ी का इंजन और दूसरी ओर बदहवास रेल प को पार कर रहा हीरामन है। हीराबाई केवल इतना कहती है– "मैं वापस जा रही हूँ अपने देश की कम्पनी में।"[13] पुन: "लो मेरी निशानी"[6] उसके कन्धे पर शाल डालते हुए "सर्दी में काम आयेगी। गुलाबगंज के मेले में तमाशा देखने आओगे ना।। जी छोटा ना करो हीरामन तुमने कहा था ना महुआ को सौदागर ने खरीद लिया। मैं बिक चुकी हूँ ।"[7] तभी गाड़ी की चीख सुनायी देती है और कहीं एक आँसू

ढलक जाता है। उदासी में हीरामन अपने बैलों को मारने लगता है तभी उसे कोमल आवाज़ सुनायी देती हैं मानो हीराबाई कह रही हो "मारो मत।"[8]

प्रेम प्रकाश मोदी द्वारा निर्देशित 'पंचलैट' (2017) फणीश्वरनाथ रेणु की इसी नाम की कहानी का फ़िल्मी रूपान्तर है। रेणु की कहानी "मारे गये गुलफाम" पर बनी फिल्म 'तीसरी कसम' का हश्र देखने के बाद भी यह फिल्म बनाना एक साहसपूर्ण काम था। लगता है 'तीसरी कसम' (1966) के नायक हीरामन के रूप में राजकपूर इस फिल्म की प्रेरणा थी। 'पंचलैट' 50 से 60 दशक (1954) की कहानी है, जब भारत निर्माण की मुहिम में ग्राम विकास के सरकारी कार्यक्रम करने के लिए पंचायत को सरकारी कोष से सहायता मिलती थी। गाँव में आठ टोले हैं और सभी के पास अपना-अपना केरोसिन से जलने वाला आधुनिक पेट्रोमैक्स है, जो महतो टोले के पास नहीं है। प्रकट है कि महतो टोला पिछड़े वर्ग के लोगों का है। महतो पंचायत का अपने कार्यक्रमों के लिए पैसा जुटाने का एक तरीका लोगों के सामाजिक अतिक्रमण वाले व्यवहार पर जुर्माना लगाना है। नायक पर भी प्रेम करने पर जुर्माना लगाया गया था, अलबत्ता अपने आत्मसम्मान की खातिर उसने जुर्माना नहीं भरा था – "शुकराना भरो तो गाँव में रहने देंगे।"[9] जुर्माने को सभ्य प्रशासनिक भाषा में शुकराना कहना सत्य और सांकेतिक है। महतो टोले के 15 महीनों के जुर्माने से एक पेट्रोमैक्स खरीदा जाता है और खरीदने के बाद कुछ बची राशि से गाँव में पेट्रोमैक्स के आगमन पर उत्सव भी मनाया जाता है। इस कहानी में ग्रामीण समाज जाति के आधार पर विभिन्न टोलियों में विभक्त है और अपनी-अपनी जाति की वरीयता दिखाने में स्पर्धात्मक है।

कहानी की विशेषता उसके स्थानिक रंगों में है। फ़िल्म में रेणु की आँचलिकता का अभाव है हालाँकि फ़िल्म की शूटिंग के लिए योग्य स्थल का चयन किया गया है। ग्रामीण जीवन की अशिक्षा, रूढ़िवादिता, अज्ञानता पर प्रकाश डालकर जीवन्त वातावरण निर्मित किया गया है; जैसे-मुनरी ने चालाकी से अपनी सहेली कनेली के कान में बात डाल दी – 'कनेली!.... चिगों, चिध ऽ-ऽ, चिन...! कनेली मुस्कुराकर रह गयी गोधन तो बन्द है!' मुनरी बोली- "तू कह तो सरदार से गोधन जानता है पंच 'पंचलैट' बालना।' कनेली बोली- "कौन, गोधना? जानता है बालना? लेकिन...।"[10] इस प्रकार इस कहानी के संवाद पात्र एवं परिस्थिति के अनुकूल हैं। फ़िल्म में गाँव की एक जर्जरित दीवारों के स्थान पर घर की दीवारें पर उकेरी हुई एशियन पेंट की टैग लाइन जैसे चीख-चीख कर बोल रही थी कि इनमें अलग से लीपा-पोती की गयी है। नायक जलाने के पहनावे के उपरान्त अन्य पात्रों का पहनावा भी 1954 के बिहारी गाँव के अनुकूल नहीं है। फिल्म को दर्शक गम्य बनाने के लिए मुंबईया मसाला डालना साहित्य के में बदन से साथ अन्याय है। निर्देशक ने एक दृश्य में दलित अछूत जाति के पात्र का चित्रण समय और स्थिति के अनुरूप किया है, परन्तु एक अन्य दृश्य में एक साँवली बूढ़ी महिला पानी का घड़ा ले जा रही है और गोधन उससे वह घड़ा लेकर अपने अधिक सभ्य होने का और फ़िल्मी हीरोगिरी का परिचय देता है, तभी महिला का आदमी जो अर्धनग्न है, गोधन से घड़ा ले लेता है। यह दृश्य बनावटी लगते हैं। रेणु की कहानी का मूल ही विकासशील भारत की नयी प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से होने वाले बदलाव और प्रभाव को दिखाना था। लेकिन फ़िल्म मौजूदा सिने प्रौद्योगिकी के बेहतर इस्तेमाल में इतनी सफल नहीं रही

फ़िल्म में संगीत अच्छा है परन्तु बॉलीवुड का मसाला डालने के प्रयास में इसकी कमियाँ सामने आने लगती हैं। संगीत की धुनें और गीत-संगीत निर्देशक लोकगीतों से हासिल करते तो फ़िल्म अच्छी बन सकती थी। इस विषय में वे

'तीसरी कसम' का अनुकरण कर सकते थे, जिसके गीत लोकभाषा की भावात्मक सरलता के साथ लिखे और रचे गये हैं। फिल्म के एक पात्र संगीत शिक्षक (राजेश शर्मा) के सीधी माँग से सजे लम्बे बालों को झटकने में फिल्म 'पड़ोसन' के अभिनेता किशोर कुमार अभिनीत पात्र की नकल है। पड़ोसन फिल्म का शास्त्रीय रंग का प्रहसन गान "एक चतुर नार" के अन्दाज़ में "गा भैय्या गा", "बिना ताल के नाचे" को मोहल्ले की पृष्ठ-भूमि में दिखाया गया है। समूह गीत "का महतो हाँ महतो" समुदाय की नब्ज पकड़ पाने में सफल है। भक्ति गीत के साथ मयूर नाच में राधा-कृष्ण नयनाभिराम है परन्तु वृन्दावन की इस झाँकी को बिहारी गाँव में दिखाना कहानी की आवश्यकता नहीं बल्कि बॉलीवुड की परिपाटी है।

केशव प्रसाद मिश्र के हिन्दी उपन्यास "कोहबर की शर्त" के प्रथम खण्ड का फिल्मांकन फिल्म 'नदिया के पार' में किया गया है। राजश्री प्रोडक्शन्स की 1982 में निर्मित इस फ़िल्म को गोविन्द मुनिस ने निर्देशित किया। इसे तेलुगु में 'प्रेमालयम्' नाम से 'डब' किया गया था। इसके बाद 1994 में राजश्री प्रोडक्शन्स ने ही 'हम आपके हैं कौन' शीर्षक के साथ इसका पुन: निर्माण किया।

प्रेम और रोमांस हिंदी सिनेमा में एक स्थिरांक की तरह अवश्य मौजूद रहा है, पर उसकी धारणा समय और समाज में हो रहे परिवर्तनों के साथ बदलती भी रही है। नेहरूवादी दौर में प्रेम विषयक फिल्मों में जहाँ एक सामाजिक संदेश होता था, वहीं 1970 के दशक तक आते-आते उसमें ग्लैमर के तत्वों का समावेश बढ़ता गया। उदारीकरण के दौर में यह बदलाव विषयवस्तु और प्रस्तुतिकरण के स्तर पर उन्मुक्त और बहुआयामी होता गया। कथा-साहित्य पर आधारित प्रेम विषयक फिल्मों में भी इन परिवर्तनों को बदलते सामाजिक नैतिक मानदंडों के साथ बदलते हुए देखा जा सकता है।

संदर्भ

1. अंडरस्टैंडिंग बॉलीवुड : द ग्रामर ऑफ़ हिंदी सिनेमा, उल्का अंजरिया, पृष्ठ संख्या - 38
2. बॉलीवुड्स इंडिया : हिंदी सिनेमा एज अ गाइड टू कंटेम्पररी इंडिया, रशेल ड्वायर, पृष्ठ सं.192
3. 23 हिंदी कहानियां, सं. - जैनेन्द्र, पृष्ठ संख्या - 28
4. बॉलीवुड का किस्सा ए हिंदी, विजय रंचन, पृष्ठ संख्या - 111
5. 23 हिंदी कहानियां, सं. - जैनेन्द्र, पृष्ठ संख्या - 28
6. प्रतिनिधि कहानियां, रेणु, पृष्ठ संख्या- 143
7. प्रतिनिधि कहानियां, रेणु, पृष्ठ संख्या- 43
8. प्रतिनिधि कहानियां, रेणु, पृष्ठ संख्या- 40
9. प्रतिनिधि कहानियां, रेणु, पृष्ठ संख्या- 42
10. प्रतिनिधि कहानियां, रेणु, पृष्ठ संख्या- 42